

पिण्याकश्रेष्ठिनो गेहं गृहीत्वा तत्कुटुम्बकम्। निक्षिप्तं कष्टतो राज्ञा कारागारे प्रकोपतः ॥२२॥  
 येन तृष्णातुरेणोच्चैर्गृहीतं परवित्तकम्। निजं तेन स्वहस्तेन क्षयं नीतं च सर्वथा ॥२३॥  
 विवाहान्तरं सोपि समागच्छन्निजं गृहम्। श्रुत्वा स्वगेहवृत्तान्तं मार्गे पिण्याकगन्धकः ॥२४॥  
 इमौ पादौ दुरात्मानौ सर्वलक्ष्मीक्षयङ्करौ। गतौ ग्राममिति क्रोधाद्भ्रुत्वा पाषाणकेन च ॥२५॥  
 मृत्वार्तध्यानतो कष्टं षष्ठेऽसौ नरके कुधीः। लेल्लकप्रस्तरे पापी पपात प्रौढलोभतः ॥२६॥  
 इति ज्ञात्वा बुधैर्नित्यं विवेकोत्कृष्टमानसैः। त्याज्यः पापप्रदो लोभो यस्त्वन्यायप्रवर्तकः ॥२७॥  
 स जयतु जिननाथः सर्वदेवेन्द्रवन्द्यः सकलगुणसमुद्रो विश्वतत्त्वैकदीपः।  
 विगतनिखिलदोषो दत्तभव्यप्रलक्ष्मीर्विमलतरंगिरीशो बोधसिन्धुः सतां वै ॥२८॥

इति कथाकोशे कृपण-पिण्याकगन्धस्य कथा समाप्ता।

### ४३. लुब्धकस्य कथा

प्रोल्लसत्केवलज्ञानं श्रीजिनं त्रिजगद्गुरुम्। प्रणम्य परया भक्त्या वक्ष्ये लुब्धकथानकम् ॥१॥

इसके बाद राजा ने पिण्याकगन्ध को बुलवाया। पर वह घर पर न होकर गाँव गया हुआ था। राजा को उसके न मिलने से और निश्चय हो गया कि उसने अवश्य राजधन धोखा देकर ठग लिया है। राजा ने उसी समय उसका घर जब्त करवा कर उसके कुटुम्ब को कैदखाने में डाल दिया। इसलिए कि उसने पूछ-ताछ करने पर भी सलाइयों का हाल नहीं बताया था। सच है, जो आशा के चक्कर में पड़कर दूसरों का धन मारते हैं, वे अपने हाथों अपना सर्वनाश करते हैं ॥२२-२३॥

उधर ब्याह हो जाने के बाद पिण्याकगन्ध घर की ओर वापस आ रहा था। रास्ते में ही उसे अपने कुटुम्ब की दुर्दशा का समाचार सुन पड़ा। उसे उसका बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने इस धन-जन की दुर्दशा का मूल कारण अपने पाँवों को ठहराया। इसलिए कि वह उन्हीं के द्वारा दूसरे गाँव गया था। पाँवों पर उसे बड़ा गुस्सा आया और इसीलिए उसने बड़ा भारी पत्थर लेकर उससे अपने दोनों पाँवों को तोड़ लिया। मृत्यु उसके सिर पर खड़ी ही थी। वह लोभी आर्तध्यान; बुरे भावों से मरकर नरक गया। यह कथा शिक्षा देती है जो समझदार है उन्हें चाहिए कि वे अनीति के कारण और पाप के बढ़ाने वाले इस लोभ का दूर ही से छोड़ने का यत्न करें ॥२४-२७॥

वे कर्मों को जीतने वाले जिन भगवान् संसार में सदा काल रहें जो संसार के पदार्थों को दिखलाने के लिये दीपक के समान है; सब दोषों से रहित हैं, भव्य-जनों को स्वर्ग-मोक्ष का सुख देने वाले हैं, जिनके वचन अत्यन्त ही निर्मल या निर्दोष हैं, जो गुणों के समुद्र हैं, देवों द्वारा पूज्य हैं और सत्पुरुषों के लिए ज्ञान के समुद्र हैं ॥२८॥

### ४३. लुब्धक सेठ की कथा

केवलज्ञान की शोभा को प्राप्त हुए और तीनों जगत् के गुरु ऐसे जिन भगवान् को नमस्कार कर लुब्धक सेठ की कथा लिखी जाती है ॥१॥

चम्पापुर्या महाराजः संजातोभयवाहनः। पुण्डरीकाऽभवद्राज्ञी पुण्डरीकसमेक्षणा ॥२॥  
 लुब्धनामाजनि श्रेष्ठी पापतो धनलम्पटः। श्रेष्ठिनी नागवस्वाख्या तस्याभूत्प्राणवल्लभा ॥३॥  
 पुत्रौ गरुडदत्ताख्यनागदत्तौ मनःप्रियौ। लुब्धकश्रेष्ठिना तेन स्वगेहे भूरिवित्ततः ॥४॥  
 यक्षयक्षीगजोष्ट्रादि-महिषाश्वयुगानि च। हैमानि कारितान्युच्चैः शृङ्गपुच्छखुरादिषु ॥५॥  
 नाना रत्नप्रवालादिजटितानि निजेच्छया। बलीवर्दस्तु वैकाकी सुवर्णाभावतस्तदा ॥६॥  
 द्वितीयवृषभस्योच्चै-निमित्तेनैकदा कुधीः। सप्ताहोरात्रिसद्वृष्टौ जातायां कर्मयोगतः ॥७॥  
 गंगाप्रवाहतः काष्ठं कष्टादानयति स्म सः। अहो दुरात्मनां तृष्णा कदा केन प्रशाम्यति ॥८॥  
 पुण्डरीका तदा राज्ञी स्वप्रासादोपरि स्थिता। आनयन्तं महाकाष्ठं कष्टतो वीक्ष्य लुब्धकम् ॥९॥  
 स्वनाथं प्रति सा प्राह हंहो स्वामिंस्तवापि च। राज्ये कोपि दरिद्रोऽयं दृश्यते कष्टमाश्रितः ॥१०॥  
 अस्मै किञ्चिद्धनं देव दीयते करुणाधिया। युक्तं कारुण्ययुक्तानां चित्ते दानमतिर्भवेत् ॥११॥  
 तदाकर्ण्य नृपो धीमांस्तं समाहूय लुब्धकम्। संजगाद त्वया वित्तं यावदत्र प्रयोजनम् ॥१२॥

राजा अभयवाहन चम्पापुरी के राजा हैं इनकी रानी पुण्डरीका है। नेत्र इसके ठीक पुण्डरीक कमल जैसे हैं। चम्पापुरी में लुब्धक नाम का एक सेठ रहता है। इसकी स्त्री का नाम नागवसु हैं। लुब्धक के दो पुत्र हैं। इनके नाम गरुडदत्त और नागदत्त हैं। दोनों भाई सदा हँस-मुख रहते हैं ॥२-४॥

लुब्धक के पास बहुत धन था। उसने बहुत कुछ खर्च करके यक्ष, पक्षी, हाथी, ऊँट, घोड़ा, सिंह, हरिण आदि पशुओं की एक-एक जोड़ी सोने की बनवाई थी। इसके सींग, पूँछ, खूर आदि में अच्छे-अच्छे बहुमूल्य हीरा, मोती, माणिक आदि रत्नों को जड़ाकर लुब्धक ने देखने वालों के लिए एक नया ही आविष्कार कर दिया था। जो इन जोड़ियों को देखता वह बहुत खुश होता और लुब्धक की तारीफ़ किये बिना नहीं रहता। स्वयं लुब्धक भी अपनी इस जगमगाती प्रदर्शनी को देखकर अपने को बड़ा धन्य मानता था। इसके सिवा लुब्धक को थोड़ा-सा दुःख इस बात का था कि उसने एक बैल की जोड़ी बनवाना शुरू की थी और एक बैल बन भी चुका था, पर फिर सोना न रहने के कारण वह दूसरा बैल नहीं बनवा सका। बस, इसी की उसे एक चिन्ता थी। पर यह प्रसन्नता की बात है कि वह सदा चिन्ता से घिरा न रहकर इसी कमी को पूरा करने के यत्न में लगा रहता था ॥५-६॥

एक बार सात दिन बराबर पानी की झड़ी लगी रही। नदी-नाले सब पूर आ गये। पर कर्मवीर लुब्धक ऐसे समय भी अपने दूसरे बैल के लिए लकड़ी लेने को स्वयं नदी पर गया और बहती नदी में से बहुत-सी लकड़ी निकालकर उसने उसकी गठरी बाँधी और उसे आप ही अपने सिर पर लादे लाने लगा। सच है, ऐसे लोभियों की तृष्णा कहीं कभी किसी से मिटी है? नहीं ॥७-८॥

इस समय रानी पुण्डरीका अपने महल पर बैठी हुई प्रकृति की शोभा को देख रही थी। महाराज अभयवाहन भी इस समय यहीं पर थे। लुब्धक को सिर पर एक बड़ा भारी काठ का भार लादकर लाते देख रानी ने अभयवाहन से कहा-प्राणनाथ, जान पड़ता है आपके राज में यह कोई

तावत्संगृह्यते शीघ्रं तच्छ्रुत्वा लुब्धकोवदत्। एकाकी मे गृहे देव बलीवर्दः प्रवर्तते ॥१३॥  
 विलोक्यते द्वितीयस्तु तन्निशम्य महीपतिः। जगावित्थं मदीयेषु बलीवर्देषु साम्प्रतम् ॥१४॥  
 बलीवर्दं गृहाण त्वं यः सर्वेषु मनोहरः। राजकीयान्समालोक्य ततोसौ वृषभोत्तमात् ॥१५॥  
 अस्माद् वृषेन सादृश्यो नास्ति देवेति ते वृषः। लुब्धकः प्राह भूपाग्रे ततो राज्ञा प्रजल्पितम् ॥१६॥  
 कीदृशस्ते बलीवर्दो भो वणिक्मे प्रदर्शय। ततस्तेन गृहं नीत्वा राज्ञः सन्दर्शितो वृषः ॥१७॥  
 तं समालोक्य भूपालः सुवर्णवृषभोत्तमम्। ईदृशस्ते वृषभोस्ति परमाश्चर्यमाप्तवान् ॥१८॥  
 श्रेष्ठिन्या नागवस्वा च रत्नैः स्थालं प्रपूरितम्। दत्त्वा श्रेष्ठिकरे प्रोक्त समर्पय महीभुजे ॥१९॥

बड़ा ही दरिद्री है। देखिए, बेचारा सिर पर लकड़ियों का कितना भारी गट्टा लादे हुए आ रहा है। दया करके इसे कुछ आप सहायता दीजिए, जिससे इसका कष्ट दूर हो जाये। यह उचित ही है कि दयावानों की बुद्धि दूसरों पर दया करने की होती है। राजा ने उसी समय नौकरों को भेजकर लुब्धक को अपने पास बुलवाया। लुब्धक के आने पर राजा ने उससे कहा—जान पड़ता है तुम्हारे घर की हालत अच्छी नहीं है। इसका मुझे खेद है कि इतने दिनों से मेरा तुम्हारी ओर ध्यान न गया। अस्तु, तुम्हें जितने रुपये पैसे की जरूरत हो, तुम खजाने से ले जाओ। मैं तुम्हें एक पत्र लिख देता हूँ। यह कहकर राजा पत्र लिखने को तैयार हुए कि लुब्धक ने उनसे कहा—महाराज, मुझे और कुछ न चाहिए किन्तु एक बैल की जरूरत है। कारण मेरे पास एक बैल तो है, पर उसकी जोड़ी मुझे मिलानी है। राजा ने कहा—अच्छी बात है तो जाओ हमारे बहुत से बैल हैं उनमें तुम्हें जो बैल पसंद आवे उसे अपने घर ले जाओ। राजा के जितने बैल थे उन सबको देख आकर लुब्धक ने राजा से कहा—महाराज, उन बैलों में मेरे बैल सरीखा तो एक भी बैल मुझे नहीं दिखाई पड़ा। सुनकर राजा को बड़ा अचम्भा हुआ। उन्होंने लुब्धक से कहा—भाई, तुम्हारा बैल कैसा है, यह मैं नहीं समझा। क्या तुम मुझे अपना बैल दिखाओगे? लुब्धक बड़ी खुशी के साथ अपना बैल दिखाना स्वीकार कर महाराज को अपने घर पर लिवा ले गया। राजा को उस सोने के बने बैल को देखकर बड़ा अचम्भा हुआ। जिसे उन्होंने एक महा दरिद्री समझा था, वही इतना बड़ा धनी है, यह देखकर किसे अचम्भा न होगा ॥१९-१८॥

लुब्धक की स्त्री नागवसु अपने घर पर महाराज को आये देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई उसने महाराज की भेंट के लिए सोने का थाल बहुमूल्य सुन्दर-सुन्दर रत्नों से सजाया और उसे अपने स्वामी के हाथ में देकर कहा—इस थाल को महाराज को भेंट कीजिए। रत्नों के थाल को देखकर लुब्धक की तो छाती बैठ गई, पर पास ही महाराज के होने से उसे वह थाल हाथों में लेना पड़ा। जैसे ही थाल को उसने हाथों में लिया उसके दोनों हाथ थर-थर काँपने लगे और ज्यों ही उसने थाल देने को महाराज के पास हाथ बढ़ाया तो लोभ के मारे इसकी अंगुलियाँ महाराज को साँप के फण की तरह देख पड़ी। सच है, जिस पापी ने कभी किसी को एक कौड़ी तक नहीं दी, उसका मन क्या

तदा तस्य प्रलोभत्वात्स्थालं च ददतो द्रुतम्। हस्तस्याङ्गुलयो जाताः फणाकाराः सुकष्टतः ॥२०॥  
 दत्तं येन कदा किञ्चित्कस्मैचिन्नैव पापतः। तन्मतिः प्रेरिता चापि नास्ति दाने कदाचन ॥२१॥  
 ततो राजा विलोक्योच्चैस्तच्चरित्रं सुनिन्दितम्। दुष्टात्मा फणहस्तोयमित्युक्त्वा स्वगृहं गतः ॥२२॥  
 एकदासौ महालोभग्रहग्रस्तस्तु लुब्धकः। तद्द्वितीयबलीवर्दनिमित्तं पापकर्मतः ॥२३॥  
 गत्वा च सिंहलद्वीपप्रमुखेषु बहुष्वपि। चतस्रः स्वर्णकोट्यस्तु समुपाज्यं प्रकृष्टतः ॥२४॥  
 सिन्धुमध्ये समागच्छन्स्फुटिते यानपात्रके। मृत्वा सर्पो निजे गेहे निधिस्थाने बभूव च ॥२५॥  
 तत्रापि तद्धनं कस्य गृहीतं न ददाति सः। कोपाद् गरुडदत्तेन ज्येष्ठपुत्रेण मारितः ॥२६॥  
 तदा मृत्वा चतुर्थेऽसौ महार्तध्यानपीडितः। संजातो नारको घोरे नरके पापकर्मणा ॥२७॥  
 एवं धर्मं विना जन्तुर्नाना लोभादिवञ्चितः। कष्टं प्रयाति पापेन संसारे दुःखसागरे ॥२८॥  
 ज्ञात्वैवं भवदुःखकोटिजनकं दुष्क्रोधलोभादिकं त्यक्त्वा दूरतरं विशुद्धमनसस्त्रेधा सदा चेतसि।  
 श्रीमत्सारजिनेन्द्रदेवगदितं धर्मं सुशर्मप्रदं शक्त्या भक्तिभरेण शान्तिनिलयं सन्तो भजन्तु श्रिये ॥२९॥

**इति कथाकोशे लुब्धकश्रेष्ठिनः कथा समाप्ता।**

दूसरे की प्रेरणा से भी कभी दान की ओर झुक सकता है? नहीं। राजा को उसके ऐसे बुरे बरताव पर बड़ी नफरत हुई फिर एक पल भर भी उन्हें वहाँ ठहरना अच्छा न लगा। वे उसका नाम 'फणहस्त' रखकर अपने महल पर आ गये ॥१९-२०॥

लुब्धक की दूसरा बैल बनाने की आकांक्षा अभी पूरी नहीं हुई वह उसके लिए धन कमाने को सिंहलद्वीप गया। लगभग चार करोड़ का धन उसने वहाँ रहकर कमाया भी। जब वह अपना धन, माल-असबाब जहाज पर लाद कर लौटा तो रास्ते में आते-आते कर्मयोग से हवा उलटी वह चली। समुद्र में तूफान पर तूफान आने लगे। एक जोर की आँधी आई उसने जहाज को एक ऐसा जोर का धक्का मारा कि जहाज उलट कर देखते-देखते समुद्र के विशाल गर्भ में समा गया। लुब्धक, उसका धन-असबाब, इसके सिवा और भी बहुत से लोग जहाज के संगी हुए। लुब्धक आर्तध्यान से मरकर अपने धन का रक्षक साँप हुआ। तब भी उसमें से एक कोड़ी भी किसी को नहीं उठाने देता था ॥२१-२६॥

एक सर्प को अपने धन पर बैठा देखकर लुब्धक के बड़े लड़के गरुडदत्त को बहुत क्रोध आया और इसीलिए उसने उसे उठाकर मार डाला। यहाँ से वह बड़े बुरे भावों से मरकर चौथे नरक गया, जहाँ के पापकर्मों का बड़ा ही दुस्सह फल भोगना पड़ता था। इस प्रकार धर्मरहित जीव क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के वश होकर पाप के उदय से इस दुःखों के समुद्र संसार में अनन्त काल तक दुःख-कष्ट उठाया करता है। इसलिए जो सुख चाहते हैं, जिन्हें सुख प्यारा है, उन्हें चाहिए कि वे इन क्रोध, लोभ, मान, मायादि को संसार में दुःख देने वाले मूल कारण समझ कर इनका मन, वचन और शरीर से त्याग करें और साथ ही जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश किये धर्म को भक्ति और शक्ति के अनुसार ग्रहण करें, जो परम शान्ति-मोक्ष का प्राप्त कराने वाला है ॥२७-२९॥

### ४४. वसिष्ठतापसस्य कथा

नत्वाष्टादशभिर्दोषैर्निर्मुक्तं जिननायकम्। वसिष्ठतापसस्योच्चै-श्चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥  
 मथुरानगरे राजा समभूदग्रसेनवाक्। रेवतीनाम तद्राज्ञी संजाता चित्तवल्लभा ॥२॥  
 श्रेष्ठी श्रीजिनदत्ताख्यो जिनपादाब्जषट्पदः। तस्यैव श्रेष्ठिनो दासी प्रियंगुलतिकाभवत् ॥३॥  
 पुरे तत्र वसिष्ठाख्य-स्तापसो यमुनातटे। कृत्वा स्नानं च पञ्चाग्निसाधनं कुरुते सदा ॥४॥  
 तदा पौरजनो मूढस्तं समालोक्य तापसम्। स जातो भक्तिकस्तस्य मूढा मूढक्रियारताः ॥५॥  
 पौरदास्यस्तथा सर्वाः पानीयानयनक्षणे। नित्यं प्रदक्षिणीकृत्य भक्तितस्तं नमन्ति च ॥६॥  
 सा प्रियंगुलता दासी सखीभिः प्रेरितापि च। प्रणामं कुरुते नैव जैनगेहप्रसंगतः ॥७॥  
 ततस्ताभिर्बलात्कारं संधृत्वा हस्तपादयोः च। पात्यमाना पदे तस्य निःशंकं सा जगाविति ॥८॥  
 यद्यस्य तापसस्यात्र प्रणामः क्रियते मया। तदा धीवरनाथस्य प्रणामः क्रियते न किम् ॥९॥  
 तच्छ्रुत्वा सर्वदासीनां रुष्टोसौ तापसः कुधीः। नष्टास्ताश्च मदोन्मत्ताः कृत्वा हास्यं च दासिकाः ॥१०॥

### ४४. वशिष्ठ तापसी की कथा

भूख, प्यास, रोग, शोक, जन्म, मरण, भय, माया, चिन्ता, मोह, राग, द्वेष आदि अठारह दोषों से जो रहित हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर वशिष्ठ तापसी की कथा लिखी जाती है ॥१॥

उग्रसेन मथुरा के राजा थे। उनकी रानी का नाम रेवती था। रेवती अपने स्वामी की बड़ी प्यारी थी। यहीं एक जिनदत्त सेठ रहता था। जिनदत्त के यहाँ प्रियंगुलता नाम की एक नौकरानी थी। मथुरा में यमुना किनारे पर वशिष्ठ नाम का एक तापसी रहता था। वह रोज नहा-धोकर पंचाग्नि तप किया करता था। लोग उसे बड़ा भारी तपस्वी समझ कर उसकी खूब सेवा-भक्ति करते थे। सो ठीक ही है, असमझ लोग प्रायः देखा-देखी हर एक काम करने लग जाते हैं। यहाँ तक कि शहर की दासियाँ पानी भरने को कुँए पर जब आती तो वे भी तापस महाराज की बड़ी भक्ति से प्रदक्षिणा करती, उनके पाँवों पड़ती और उनकी सेवा-सुश्रुषा कर फिर वे घर जातीं। प्रायः सभी का यही हाल था। पर हाँ प्रियंगुलता इससे बरी थी। उसे ये बातें बिल्कुल नहीं रुचती थीं। इसलिए कि वह बचपने से ही जैनी के यहाँ काम करती रही। उसके साथ की और स्त्रियों को प्रियंगुलता का यह हठ अच्छा नहीं जान पड़ा और इसलिए मौका पाकर वे एक दिन प्रियंगुलता को उस तापसी के पास जबरदस्ती लिवा ले गई और इच्छा न रहते भी उन्होंने उसका सिर तापसी के पाँवों पर रख दिया। अब तो प्रियंगुलता से न रहा गया। उसने गुस्सा होकर साफ-साफ कह दिया कि यदि इस ढोंगी के मैं हाथ जोड़ूँ, तब फिर मुझे एक धीवर (भोई) के ही क्यों न हाथ जोड़ना चाहिए? इससे तो वह बहुत अच्छा है। एक दासी के द्वारा अपनी निन्दा सुनकर तापसी जी को बड़ा गुस्सा आया। वे उन दासियों पर भी बहुत बिगड़े, जिन्होंने जबरदस्ती प्रियंगुलता को उनके पाँवों पर पटका था। दासियाँ तो तापसी जी की लाल-पीली आँखें देखकर उसी समय वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो गई पर तापस महाराज की क्रोधाग्नि तब भी न बुझी ॥२-१०॥